

‘ग्लोबल’ से ‘गायब’ होता देश तथा आदिवासी संघर्ष

◎ प्रिया सिंह

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में भूमंडलीकरण एवं नए बाजार के उदय के लगभग साथ ही साथ नए सामाजिक आंदोलनों का भी उदय होता है। हाशिए पर पड़े तथा विकास की दौड़ में पीछे छूट गए जातियाँ/जनजातियाँ एवं वर्ग अपनी मानवीय पहचान व अधिकार के लिए आवाज उठाते हैं। इस दौरान ऐसे अनेक उपन्यास लिखे गए जो ना सिर्फ़ इनकी पीड़ा को स्वर देते हैं साथ ही साथ इनके शोषण एवं दमन के विरुद्ध आवाज भी उठाते हैं। रणेंद्र के उपन्यास ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ तथा ‘गायब होता देश’ इसी उद्देश्य से लिखे गए महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

‘ग्लोबल गाँव के देवता’ आदिवासियों के सम्बन्ध में गढ़े हुए भ्रमों एवं मिथिकों को खंडित करता हुआ उनके समकालीन जीवन, समस्याओं एवं अनवरत जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्रण करता है। मुख्य रूप से झारखण्ड की ‘असुर’ जनजाति पर केन्द्रित होते हुए भी इसमें झारखण्ड सहित अन्य राज्यों व कई देशों के आदिवासियों (इंका, माया, इज्टेक, अमेरिका की चेराकी जनजाति आदि) के अतीत व वर्तमान की त्रासदियों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। ‘असुर’ प्रारंभ से ही प्रताङ्गित किये गए, उन्हें लगातार अपनी जमीन से विस्थापित किया गया और विस्थापन की यह त्रासदी वे आज भी ज्ञेल रहे हैं। फर्क सिर्फ़ इतना है की पहले इन्द्र पाण्डवों एवं सिंगबोगा ने इनका विनाश किया और भूमंडलीकरण के दौर में इनका स्थान वेदांग, शिंडालकों जैसे ग्लोबल गाँव के व्यापारियों (अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियों) ने ले लिया है जो पूरी तैयारी के साथ इन्हें अपनी जमीन से खदेड़ने को तत्पर हैं। इस कार्य में शासन एवं सत्ता का भी पूरा सहयोग इन्हें प्राप्त है। वेदांग अपनी एल्युमिनियम की फैक्ट्री लगा सके इसलिए सरकार इस इलाके (झारखण्ड के आदिवासी इलाके) में भौड़ियों की लगातार घट रही संख्या को लेकर चिंतित है और इसलिए आदिवासियों के सैतीस बन गावों को खली कर वहाँ अभ्यारण बनाने का निर्णय करती है। डी०एम०, एम०डी०एम०, एस०पी०, थानेदार सबके तैनात होते हुए भी कच्चा माल बिना किसी बाधा फैक्ट्रीओं तक पहुँचता रहता है। शासन का सहयोग प्राप्त होने के कारण ही शर्तों के अनुसार जो विकास कार्य इन फैक्ट्रीयों को इस इलाके में करने थे, वे भी नहीं किये जाते। देश भर में जहाँ ग्लोबलाइजेशन जैसे ममलों पर बहस हो रही है, नए-नए सिद्धान्त गढ़े जा रहे हैं, वहाँ देश के एक कोने में लोग अंधविश्वास के कारण एक दूसरे की हत्याएं करने में व्यस्त हैं। जब जानते हुए भी प्रशासन इस पर निष्क्रिय है।

जब कभी आदिवासियों ने एकजुट होकर इनका विरोध किया तब या तो किशन कन्हैया पाण्डेय जैसे दलालों की सहायता से इनकी एकता तोड़ दी गयी या नक्सलियों का नाम देकर इनका संहार किया गया। यह उपन्यास जीवन के लिए संघर्ष करते हाशिए के इन मनुष्यों के प्रति मीडिया के व्यवहार पर भी प्रश्न उठाता है। इस प्रकार इन आदिवासी जनजातियों के विरुद्ध एक ओर ग्लोबल गाँव के देवता हैं तो दूसरी ओर शासन एवं सत्ता के लोग इनके अतिरिक्त शिवदास बाबा जैसे धार्मिक ठेकेदार भी हैं। जो धर्म के नाम पर इनका शोषण करते हैं। इनकी स्थिति उस जख्मी हिरण के समान

है जो शिकारियों की आवाज़ सुनकर स्वंम को पूर्ण मृत्यु के लिए तैयार कर रहा है। रुमझुम का यह गीत इसी भयानक परिणाम की ओर इशारा करता है—

‘हम बाकी ज़िन्दगी कैसे गुजारेंगे

इसका कोई अर्थ नहीं

हमारी रात

भरपूर काली रात होने का आश्वासन दे रही है.....

एक ज़ख्मी हिरण अपने पीछे भागते शिकारी की आवाज़ सुनकर

अपने आप को

अपनी पूर्ण मृत्यु के लिए तैयार कर रहा है।’’^१

बदहाल ज़िन्दगी गुजारते ये संस्कृतिविहीन, भाषाविहीन, साहित्य एवं धर्मविहीन समुदाय मुख्यधारा दारा भी उपेक्षित किया जा रहा है। झारखण्ड के आदिवासियों की समस्या गंभीर है। उसका निवारण करने की सरकारी नीतियाँ भी आदिवासियों के लिए दमनकारी साबित हो रही हैं। उनकी ज़मीनों का अधिग्रहण आज भी जारी है। “झारखण्ड में १९५० के बाद से अभी तक २२ लाख एकड़ ज़मीन की खरीदी गयी है जिसमें १५ लाख आदिवासी बर्बाद हो गए। ये भूमंडलीकरण की नीतियाँ जब से लगी हैं और पोस्को और जिंदल यहाँ आये हैं, १० लाख आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं अपनी ज़मीनों से।”^२

कहते हैं रचनाकार अतीत का द्रष्टा, सुक्ष्मातिसुक्ष्म विचार सारणियों का उपस्थापक और तत्त्वाभिनिवेशी होता है। वर्तमान का यथार्थवादी चित्रण करने वाला होता है तथा भविष्य को वह संभावनाओं के परिप्रेक्ष्य में आंकलित करता है, तमाम दबावों के बावजूद स्वर्णिम भविश्य की कल्पनाओं एवं सच्चाइयों को संकेतित करता है। रणेंद्र असुर जनजाति के संघर्ष की समकालीनता को तो कायम रखते ही हैं साथ ही उनके संघर्ष एवं सांस्कृतिक इतिहास पर भी प्रकाश डालते हैं जिसने उसे ‘असुर’ नाम दिया। आग व धातु की खोज करने वाली असुर जाति को देखता छल-कपट से पराजित करते आ रहे हैं। बार-बार पराजित होने के बाद भी वे अपने जीवन के लिए संघर्ष कर रहे हैं, किन्तु इन्हें हटाने व नष्ट करने की प्रक्रिया आज भी जरी है। इस प्रकार उपन्यास की कथा वर्तमान में होते हुए भी अतीत से जुड़ी प्रतीत होती है। संघर्ष और असफलता के अवसाद के बीच लेखक को यह विश्वास भी है कि इन्हीं पराजित लोगों में से कोई नायक सामने आयेगा और अपने हक की लड़ाई स्वयं लड़ेगा। मात्र सौ पृष्ठ में सीमित होने के कारण उपन्यास की कथा में गतिशीलता दिखाई देती है तथा इसके सभी पात्र कथा के अनिवार्य अंग लगते हैं। यदि किसी एक पात्र को भी हटा दिया जाए तो उपन्यास घट जायेगा जैसे— ललिता की उपस्थिति पकाहांतस के प्रसंग, रुमझुम एवं सुनील असुर की उपस्थित को सार्थक बनाती है।

प्रत्येक रचना की कुछ विशेषताएं होती हैं जो उसे अन्य से अलग करती हैं साथ ही उसकी कुछ खामियाँ या दुर्बलताएं भी होती हैं। आदिवासी जीवन एवं समाज की जिन समस्याओं को रणेंद्र असुर जाति के अस्तित्व संघर्ष के माध्यम से रेखांकित करते हैं, उस दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है, किन्तु कथा संरचना की दृष्टि से इसकी कुछ दुर्बलताएं भी सामने आती हैं। रचनाकार मात्र ‘असुर’ जनजाति ही नहीं वरन् जितनी भी जानकारी उनके पास है, सबका वर्णन मात्र सौ पृष्ठ के उपन्यास में करने का प्रयास करते हैं। जैसे— विश्व स्तर पर विलुप्त कर दी गई जनजातियाँ इंका, माया तथा सैकड़ों रेड इंडियन्स की हत्या; अमेरिका की चेराकी जनजाति किस प्रकार सरकारी तंत्र द्वारा मौत के घाट उतारी जाती है; १८३५-४० के बीच सेमिनोत जनजाति को उजाड़ने में चार से छह करोड़ डॉलर खर्च किए जाने का वृतांत जिसकी पारिणती’ टेट ऑफ टीयर्स’ में हुई तथा मेसाचुसेट्स के राजा

भाग १०१ : संख्या २

चैत्र-ज्येष्ठ

मेटाकोम को छल करना। ये प्रसंग पाठक के समक्ष गंभीरता में भी ‘ग्लोब

नहीं रह पता। ऐ में सामने आते ही की सरकारी नीति (अंतर्राष्ट्रीय कम खेलना आदि) रूप में सामने उन पर एक से लिए बाजार के उठाते जो परिसर के मूल सकारा से घबराकर दि

‘लं काफी चर्चा में दुर्बलताएं भी उपन्यास बहुत की तरह ही दि के स्थान पर

उप कहानी है, म पहाड़ों के बी इन आदिवास के नाम पर है। बड़े-बड़े एवं सीमा से डाल रहा है भाव सम्पदा देती है— ‘अंधाधुंध क अभी ही चा समझदार इं था, सरना बहनेवाली, का वास था गायब होने

मेटाकोम को छल से बर्बरतापूर्वक मार दिया जाना और ललिता की तुलना राजकुमारी पोकाहांतस से करना। ये प्रसंग पड़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो रचनाकार उसे ज्ञात सभी सूचनाओं को एक साथ ही पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर देना चाहता है तो कथा के प्रवाह को अवरुद्ध करने के साथ ही कथा की गंभीरता में भी बाधा डालते हैं।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास की एक दुर्बलता यह भी है कि यह एक बिंदु पर केन्द्रित नहीं रह पता। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो कथा को घनत्व एवं गहनता ना देकर सरलीकृत ब्योरे के रूप में सामने आते हैं। जैसे-भेड़िया अभ्यारण बनाने के लिए सैनीस बन गावों के आदिवासियों को उजाड़ने की सरकारी नीति, वन विभाग के अधिकारियों द्वारा रेकार्डों में इन गावों के निर्जन दिखाना, वेदांग (अंतर्राष्ट्रीय कम्पनी) को अभ्यारण के लिए अधिग्रहित जमीन पर तारबंदी का ठेका देकर राजनीति खेलना आदि। ये ऐसे प्रसंग हैं जो कथानक को गहनता नहीं देते, वरन् लेखक द्वारा सूचना मात्रा के रूप में सामने आते हैं। रचनाकार चरित्रों की मनोदशा एवं स्थितियों को समझने की कोशिश ना कर उन पर एक सरसरी निगाह डाल उन्हें अच्छे या बुरे में विभाजित करते हैं। वे असुरों के विघटन के लिए बाजार को तो दोषी मानते हैं किन्तु रुमझुम, सुनील, ललिता तथा लालचन दा पर प्रश्न नहीं उठाते जो परिस्थितियों से मुकाबला करने के बजाए मुंड मोड़ लेते हैं। साथ ही वे विकास योजनाओं के मूल सकारात्मक चरित्र को पहचानने के बजाए कम्पनियों की स्वार्थी नीतियों, प्रशासन तथा भ्रष्टाचार से घबराकर विकास की अवधारणा को ही प्रश्नांकित करते हैं।

'ग्लोबल गाँव के देवता' के कुछ समय बाद आया इनका उपन्यास 'गायब होता देश' भी काफी चर्चा में रहा। शिल्प एवं कथा संरचना की दृष्टि से इनके पहले उपन्यास में जो अनगढ़पन एवं दुर्बलताएं भी उसे इस उपन्यास में पूरा करने की कोशिश की गयी है। पहले की तुलना में इनका यह उपन्यास बहुत ही सधे एवं मंजे रूप में सामने आता है। 'गायब होता देश' भी इनके पूर्ववर्ती उपन्यास की तरह ही विस्थापित होते जा रहे आदिवासी समाज की समस्याओं को सामने रखता है, यहाँ 'असुर' के स्थान पर 'मुंडा' आदिवासी समुदाय केंद्र में है।

उपन्यास की मुख्य कहानी पत्रकार किशन विद्रोही की तथा उनकी डायरी में दर्ज जीवन की कहानी है, मगर इस डायरी का बड़ा और प्रासंगिक हिस्सा सदियों से अपनी जर, जमीन और जंगल पहाड़ों के बीच रह रहे लोगों के अस्तित्व की रक्षा के लिए किये जाने वाले संघर्ष से जुड़ा है। इस प्रकार इन आदिवासी समुदाय का दुःख-दर्द एवं संघर्ष उपन्यास की मुख्य कथावस्तु बन जाती है। विकास के नाम पर बाजार के वैशीकरण ने दुनिया की एक बड़ी आबादी को विनाश की ओर धकेल दिया है। बड़े-बड़े बंधों का निर्माण करना, जंगलों को काट कर इमारतें बनाना, खनिजों का आवश्यकता एवं सीमा से अधिक उपभोग जहाँ-एक ओर जंगल में रहने वाले आदिवासियों के जीवन को संकट में डाल रहा है वहीं पूँजी प्रतिष्ठान देश समय और समाज के लिए मूल्य, विचार, संस्कृति, राजनीति और भाव सम्पदा को हर स्तर पर क्षति पहुँचा रहा है। इसकी झलक उपन्यास के इस पूर्वकथन में साफ दिखाई देती है— “उसने बंदरगाह बनाने, रेल की पटरियां बिछाने, फर्नीचर बनाने, मकान बनाने के लिए अंधाधुंध कटाई शुरू की। मरंग-बुरु-बोंगा की छाती की हर अमूल्य निधि, धातु-अयस्क उसे आज ही अभी ही चाहिए था.... वे दौड़ में अपनी परछाइयों से प्रतिदंदिता कर रहे थे.... इन्हीं जरूरत से ज्यादा समझदार इंसानों की अंधाधुंध उड़ान के उठे गुबार-बबंदर में सोना लेकन दिसुम गायब होता जा रहा था, सरना वनस्पति गायब हुआ, मरंग-बुरु-बोंगा, पहाड़ देवता गायब हुए, गीत गानेवाली, धीमे बहनेवाली, सोने की चमक बिखेरने वाली, हीरों से भरी सारी नदियां जिनमें इकिर बोंगा-जल देवता का वास था, गायब हो गयीं। मुंडाओं के बेटे-बेटियां भी गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकन दिसुम गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।”³ इस प्रकार विकास की दौड़ में न सिर्फ प्राकृतिक संपदा

होते जाने
है उसमें

सन्दर्भ
१.
२.
३.

को क्षति पहुँच रही है वरन हमारी संस्कृति व मूल्य भी क्षतिग्रस्त हो रहे हैं या यूँ कहें कि गायब हो रहे हैं।

यह उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यास की तरह आदिवासी अस्मिता का प्रश्न तो उठाता ही है साथ ही बाजार के भूमंडलीकरण से उत्पन्न संकट को सामने लाते हुए पूरी दुनिया पर मंडरा रहे साम्राज्यवाद के खतरों से भी परिचित कराता है। जो इस उपन्यास की मुख्य विशेषता भी है आदिवासियों के जीवन संघर्षों के करक तत्त्वों की जड़ में यही साम्राज्यवाद है जो कुछ अमीर लोगों के भोग की सामग्री जुटाने के लिए वाकी लोगों को कीड़े-मकोड़ों के समान उनकी लालसाओं की भेट चढ़ा देते हैं। यही कारण है कि आदिवासियों में ही जन्मे साहब-सूबा डी०डी०सी०, ए०डी०एम०, ट्रांसपोर्ट, एक्साइज, और सप्लाई के अफसर इंजीनियर, डॉक्टर, इंस्पेक्टर आदि कारपोरेट-जनप्रतिनिधि-माफिया-अफसर सुरक्षा तंत्र लुटेरे गठजोड़ का अंग बन कर जीवन गुजार रहे हैं। इसी क्रम में सोमेश्वर मुंडा अपने पुरखों के इतिहास और ज्ञान विज्ञान की लुप्त विरासत के पुनराविष्कार के क्रम में जे वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं, उन्हें रोसलिन मिल द्वारा चुराना और फिर जेम्स मिल द्वारा उसे हथियाका आदिवासियों के संहार की कीमत पर अमीरों के अमरत्व की तकनीक में बदलने की कोशिश करन जहाँ इस गठजोड़ का खुलासा करता है वहीं विज्ञान के अपराधीकरण को भी सामने लाता है।

जिस प्रकार अपने पहले उपन्यास में रणेंद्र आशा की किरण के रूप में एक नायक को सामने लाते हैं जो अस्तित्व के लिए होने वाले संघर्ष की कमान संभालता है उसी तरह वे यहाँ भी बताना नहीं भूलते कि यही गायब होता हुआ देश अंत होते-होते अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए लड़ता रहा है। जिस तरह गायब होते जाना एक सच्चाई है उसी तरह परिस्थितियों से लड़ना और आगे बढ़ना भी एक सच है। इसी उद्देश्य से वे सोमेश्वर मुंडा, सोनामनी दी, नीरज, अनुजा पाहन आदि की लड़ाई वे साथ साझेदार बने किशन विद्रोही, सुबोध दा, रमा, राजेश, अमरेन्द्र, संजय जयसवाल, कमला आदि पत्रों का सृजन करते हैं जो स्वयं आदिवासी न होते हुए भी सामाजिक जिम्मेदारी, नैतिक दंद तथा आत्मसंघर्ष से गुजरते हुए अपना अपना पक्ष ग्रहण करते हैं तथा आदिवासियों के संघर्ष में उनका साथ देते हैं। इस उपन्यास की एक अन्य विशेषता यह है कि जहाँ अब तक के ज्यादातर लेखक ग्रामीणों के हालात को विषय बनाते हैं वहाँ रणेंद्र गांव से विस्थापित होकर शहरों में आ बसे आदिवासियों की त्रासदी को भी सामने लाते हैं। गाँवों से विस्थापित हुए विभिन्न क्षेत्रों एवं समुदायों के आदिवासी किशनपु की गंदी, मलिन और बिजली-पानी के लिए तरसती बस्तियों में समा जाते हैं। किन्तु एक न एक दिन इन्हें इन बस्तियों से भी खेड़ दिया जाता है। परिस्थितियों वश युवा लड़के नशे व अपराध में डूँ जाते हैं तो पुरुष रोजगार के लिए शहरों में भटकते हैं, खियां बड़े-बड़े घरों में झाड़ू-पोंछा करती हैं तो लड़कियां मजबूरी में यहाँ वहाँ अपमानित व शोषित होती हैं।

यह उपन्यास आदिवासी क्षेत्र में चल रही लूट की कहानी एवं उनके जीवन संघर्ष को किशन विद्रोही के मध्यम से व्यक्त करता है, जो मिथिला का एक ब्राह्मण है। इसी प्रकार 'ग्लोबल गांव' के देवता में असुर जनजाति की कहानी एक गैर आदिवासी मास्टर द्वारा कही जाती है। रणेंद्र के उपन्यासों पर अक्सर यह सवाल उठाया जाता है कि इनके मुख्य कथावाचक गैर आदिवासी ही क्यूँ होते हैं। इस कारण इनके उपन्यासों को पूरी तरह से आदिवासी उपन्यास भी नहीं मानते। यदि इन उपन्यासों के पूरी तरह से आदिवासी उपन्यास न भी माने तो भी रणेंद्र ने 'असुर' व 'मुंडा' आदिवासी समाज के जिस बारीकी से अध्ययन किया तथा उनकी समस्याओं को जितनी गहराई से समझा और व्यक्त किया है उसके अनुसार अपनी सभी दुर्बलताओं के साथ भी यह आदिवासी समाज व साहित्यक विमर्श लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण रचनाओं के रूप में सामने आते हैं। ये उपन्यास पहले देश के 'ग्लोबल गांव' में बदलने और फिर विकास के नाम पर हो रहे आदिवासी शोषण एवं दमन तथा देश के 'गायब'

यब होते जाने के सत्य को उद्घाटित करते हैं पिछले कुछ वर्षों में आदिवासियों पर जो लेखन कार्य हुआ है उसमें रणेंद्र के उपन्यास सराहनीय प्रयास हैं।

सन्दर्भ

१. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, ज्ञानपीठ प्रकाशन २०१४ संस्करण, पृष्ठ-१०।
२. वीर भारत तत्त्वावार, भारतीय राष्ट्र और आदिवासी, www.debateonline.com; पृष्ठ-५।
३. रणेंद्र, पूर्वकथन, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स लिमिटेड, २०१४ संस्करण, पृष्ठ-३।

शोध छात्रा (हिन्दी विभाग)

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय
लखनऊ (उ०प्र०)

पत्रव्यवहार का पता :

बी-१/११, सेक्टर-सी, अलीगंज,
लखनऊ-२२६०२४

